vf/kxe
अंक 17 : दिसम्बर 2020

efDrck/k dh dfork ^v/kj: e* dh ey lonuk % dN fopkj

डॉ0 अनीता *

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' हिन्दी साहित्य जगत में वह नाम है जिसने अपने समकालीन रचनाकारों से भिन्न काव्य दृष्टिकोण अपनाते हुए सबको गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। उनकी काव्य–दृष्टि केवल 'कवि' की अनुभूति ही नहीं, अपितु व्यापक सामाजिक सरोकारों (अन्याय का प्रतिकार, भ्रष्टाचार का विरोध, समझौतापरस्ती को त्याज्य मानना, मानव सभ्यता के विकृत यथार्थ को उखाड़ना एवं सामान्य जन के प्रति मुक्ति व अनुराग का भाव) से अंतर्गुम्फित है। उनकी लगभग सभी रचनाएँ उनके संघर्ष व कवि बनाम समाज के अंतर्द्वन्द्व को परिलक्षित करती हैं। ऐसे ही बहुआयामी संघर्षों से उपजी, सामाजिक जीवनक्रम की आकांक्षा से अभिप्रेरित, मुक्तिबोध की कविता रचनात्मकता की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। उनकी लम्बी, चर्चित व विवादास्पद कविता– 'अंधेरे में' 1964 में पहली बार **dYiuk** में 'आशंका के द्वीप अंधेरे में' शीर्षक से छपी थी। 'अंधेरे में' कविता की मूल संवेदना पर विचार करने से पहले यहाँ कुछ आलोचकों, रचनाकारों के दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देना आवश्यक है। जहाँ डॉ. नामवर सिंह इसका मूल 'अस्मिता की खोज' बताते हैं, वहीं शमशेर बहादुर सिंह इसे 'इस्पाती दस्तावेज' मानते हैं। इसके अलावा श्रीकांत वर्मा– 'कविता का हिन्दुस्तान', निर्मला जैन– 'अंतस्तल का पूरा विप्लव' और विश्वनाथ त्रिपाठी 'संघर्ष पुरुष की स्वप्न–कथा' मानते हैं। चूँकि 'अंधेरे में' एक ऐसी लम्बी कविता है जो अपने अन्दर विविधता को समेटे हुए है और इसका जटिल कथ्य और शिल्पगत सौन्दर्य ऐसा है जो आसानी से समझ में नहीं आता।

'अंधेरे में' आठ खंडों में विभाजित 71 बंद की एक बहुत लंबी कविता है। कविता का प्रारंभ नाटकीय ढंग से होता है। कविता में काव्य 'मैं' (समूचे मध्यवर्ग का प्रतीक) और उसका प्रतिरूप 'वह' दिखाई देता है। 'वह' शायद 'मैं' का ही आत्मरूप है। मुक्तिबोध के लिए कवि समाज से भिन्न नहीं है। काव्यानुभूति ही जीवनानुभूति बन जाती है। मुक्तिबोध की

* *एसोसिएट प्रोफेसर,* दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रचना का अमूर्त रूप जो मन में होता है उसे वे फैंटेसी के माध्यम से व्यक्त करते हैं। उनकी समस्या अभिव्यक्ति की ही नहीं अपितु सामाजिक व राजनीतिक भी है। वे व्यक्ति की सत्ता को समाज से परे नहीं मानते। शायद इसलिए ही वे समाज एवं व्यक्ति के मन में व्याप्त अंधेरे को दूर करने की कवायद करते हैं वह भी अंर्तमन से–

''वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पाई गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज–संभावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिभाओं की
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव''[1]

जातीय अस्मिता एवं उनसे जुड़े नायकत्व की आस्था जब टूट जाती है तो वह हमें नवीन चरित्र एवं यथार्थ की तरफ ले जाता है। तभी तो मुक्तिबोध के लिए यथार्थ सतही नहीं अपितु गहनतम स्तर पर जुड़ा हुआ है। इसलिए उनकी फैंटेसी कोरी भावुकता नहीं बल्कि यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करती है। 'कविता के हिन्दुस्तान' को पहचानने में, समझने में इतना समय लगा –

''किंतु, वह फटे हुए वस्त्र क्यों पहने है?
उसका स्वर्ण–वर्ण मुख मैला क्यों?
वक्ष पर इतना बड़ा घाव कैसे हो गया?
उसने कारावास–दुःख झेला क्यों?''[2]

'अंधेरे में' एक निरन्तर खोज की कविता है और यह अंततः बरकरार रहती है। खोज की प्रक्रिया में वह अपने समय के समाज व देश की दशा–दिशा को साथ–साथ दिखाते चलती है। समय का सच बोलता हुआ प्रतीत होता है। कविता में 'मैं' यानी काव्य–नायक अपनी परम अभिव्यक्ति की खोज में विभिन्न दौरों (स्थितियों) से गुजरता है। कुछ में तो उसको सब परिचित तो दूसरी ओर अपरिचित जान पड़ते हैं। मुक्तिबोध ने सामाजिक विरोधी शक्तियों के चेहरों को स्पष्ट किया है जब पूरी बैंड पार्टी के साथ भय और आतंक के वातावरण में मृत्यु दल की शोभा यात्रा निकलती है। समाज विरोधी शक्तियों (जैसे– राजनेता, पूँजीपति, डोमा जी उस्ताद, बुद्धिजीवी वर्ग–कविगण, आलोचक, विचारक) के गठबन्धन को काव्य–नायक (मैं) देख लेता है जिसके कारण उसे खत्म करने के प्रयास किये जाते हैं–

''कंधे से कमर तक कारतूसी बैल्ट है तिरछा।
कमर में, चमड़े के कवर में पिस्तौल,
X X X
उनमें कई प्रकांड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण
मंत्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहाँ तक की शहर की हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद
X X X
आधी रात अंधेरे में उसने
देख लिया हमको
वह जान गया वह सब
मार डालो, उसको ख़तम करो एकदम!!''[3]

'रक्तालोकस्नात–पुरुष' आतंकित है। यह आंतरिक जगत की हलचल है। इसके अलावा जनता में भी भगदड़ मच गई है। 'मैं' भी दम छोड़कर भाग रहा है जिसका पीछा कोई लगातार कर रहा है –

''भागता मैं दम छोड़
घूम गया कई मोड़,
चौराहा दूर से ही दीखता
वहाँ शायद कोई सैनिक पहरेदार
नहीं होगा फिलहाल।''[4]

मुक्तिबोध फैंटेसी के इतने सुन्दर प्रयोग के चलते ही जहाँ मन की आंतरिक व बाह्य परतों को खोलते हैं वहीं दूसरी ओर पागल (सिरफिरे व्यक्ति) से वास्तविकता को एवं काव्यनायक की आत्मा–रूपी बने हुए प्रतीक को भी दिखलाते हैं। जब लिखते है–

''ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!
X X X
ज्यादा लिया, और दिया बहुत–बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गए तुम।।''[5]

अपने ऊपर 'सवाल' करते हैं मुक्तिबोध जो शायद ही कहीं देखने को मिले। बहरहाल, मुक्तिबोध शोषण मुक्त समाज की आकांक्षा अपवर्गित समाज की कल्पना में करते दीखते हैं। तभी तो इसके पहले के घाव, फटेहाल स्थिति को कचरे का ढेर नहीं मानते। तिलक, गांधी जो उनके जीवन–दर्शन मालूम होते हैं उनको प्रतीक के रूप में चुनते हैं। तिलक की मूर्ति से लाल–लाल गरम खून गिर रहा है तो गांधी जी सर्दी रूपी बोरे को ओढ़ कर पंगु बने हुए हैं। बहरहाल, गांधी जी बच्चे को 'मैं' के कंधों पर सौंप देते हैं। शिशु जो मनुष्य के दायित्व का प्रतीक है, इस दायित्व रूपी शिशु से मुक्तिबोध विकल्प प्रदान करते हैं कि यह सूरजमुखी का फूल समय के अनुरूप रायफल भी बन सकता है, जिसकी परिणति कविता में स्पष्ट द्रष्टव्य है। एक नवीन युग का बोध जिसमें जनता का भविष्य छिपा हुआ है। 'मैं' के विद्रोही रूप के चलते उसको यातनाओं का शिकार होना पड़ता है। रिहा होने के बाद वह अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने के लिए तैयार है–

''अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।''

वर्गीय चरित्र एवं पूँजीवादी व्यवस्था के पाटों में पिसने के कारण काव्य–नायक (मैं) भाग रहा है और अंततः 'वह' रूपी प्रतिरूप भीड़ में खो जाता है जिसे 'मैं' देखता रहता है। 'मैं' उस खोई हुई परम अभिव्यक्ति को हर गली, हर सड़क पर झाँककर, पठार, पहाड़ एवं समन्दर में खोजता है जो वस्तुतः कवि की नहीं अपितु जन की, यूथ की हो गई है, फिर भी आत्म अभिव्यक्ति संभवा है। अर्थात् खोज अभी जारी है– *''मेरी वह खोई हुई/ परम अभिव्यक्ति अनिवार/आत्म–संभवा''।*

मोटे तौर पर यह कहा जाय कि ''यह कविता काव्य के नाटकीय विन्यास में, अपनी शैली में या कि अपने समूचे रचाव में ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, इसकी अन्तर्वस्तु में मुक्तिबोध ने अपने समय के प्रखर यथार्थ को, सत्ता के दमनकारी जन–विरोधी चेहरे की, आतंक, भय, यातना हिंसा और रक्तपात की बुनियाद पर टिकी उसकी इमारत की एक–एक ईंट को, जिस तरह बेनकाब किया है, वह भी अपने में उतना ही महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट है।''

वस्तुतः अंधेरे के परदे पर लिखी हुई यह कविता काव्यनायक (मैं) के आत्मविस्तार और व्यक्तित्वान्तरण को मूर्तित करने के साथ–साथ

तत्कालीन समाज, व्यक्ति, परिवेश की विषमता और सत्ता के आततायी रूप को भी दिखाती चलती है।

I UnHk

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, *प्रतिनिधि कविताएँ,* (संपा0) अशोक वाजपेयी, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ संख्या–128
2. वही, पृष्ठ संख्या–129
3. वही, पृष्ठ संख्या–137–138
4. वही, पृष्ठ संख्या–140
5. वही, पृष्ठ संख्या–141–142
6. वही, पृष्ठ संख्या–161
7. वही, पृष्ठ सख्या–171
8. *'अंधेरे में' का महत्त्व,* डॉ0 राजेन्द्र कुमार, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2008, पृष्ठ संख्या–26